ओ३म्

हिन्दी मासिक संघटन का दीपावली-अंक

काशी शास्त्रार्थ

संकलन

प्रबन्धकर्त्ता वैदिक-यन्त्रालय काशी

सामवेदी प्रकाशन

वितरक

आर्यप्रतिनिधिसभा नीदरलेंड

जगद्गुरु महर्षिदयानंदसरस्वती निर्वाण-दिवस पर

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर .....
पु. परिग्रहण क्रमांक 1648

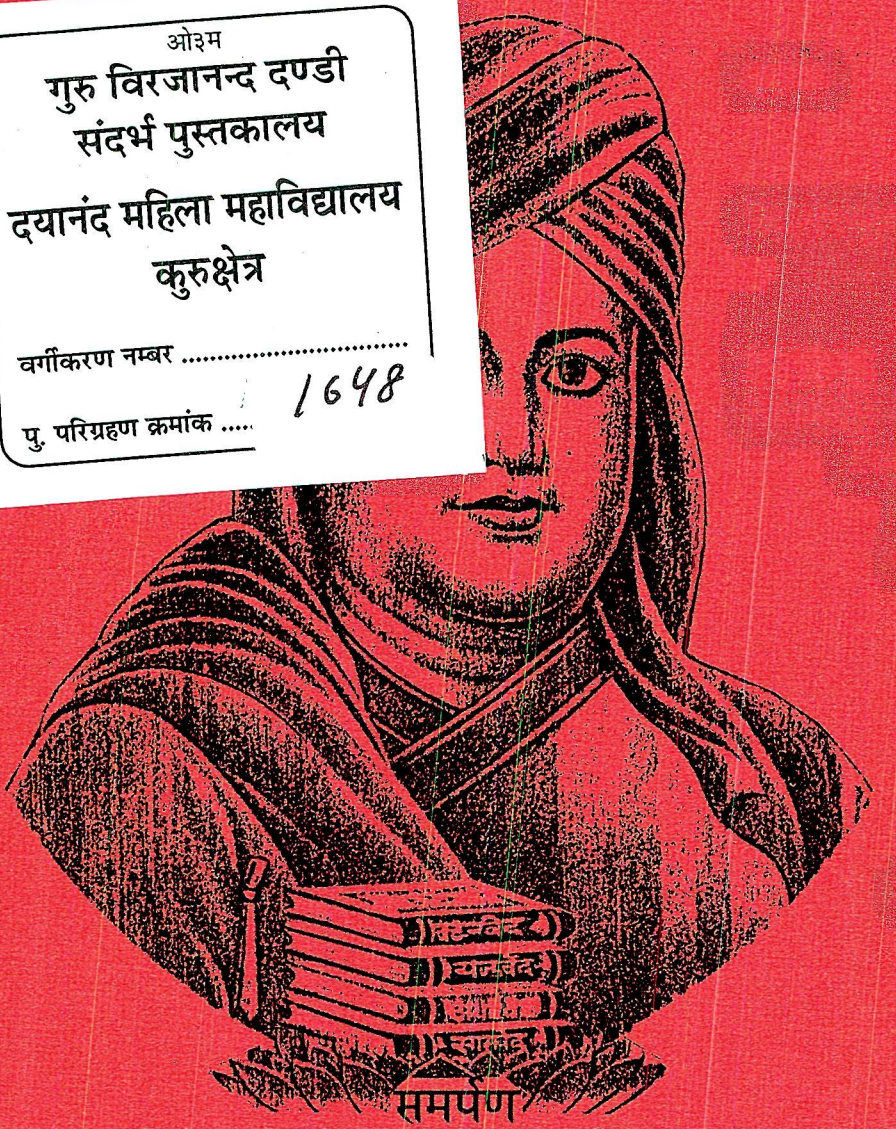

समर्पण

१९ वीं शताब्दी के सबसे बड़े वेद के विद्वान् ,धर्म प्रचारक, समाज संशोधक, देशोद्धारक, मूर्तिपूजादि पाखण्ड-विनाशक, जातिवाद-ऊंचनीच-बालविवाह-छुआछूत-सतीप्रथा-मृतकश्राद्धादि पौराणिकता के संहारक, वेदविरुद्ध सब मतमतान्तरों के प्रबल आलोचक, वैदिकधर्म के पुनर्संस्थापक, परम तपस्वी, आदित्य ब्रह्मचारी, योगिराज, महामनीषी, महर्षि स्वामीदयानंद सरस्वती महाराज के निर्वाण-दिवस पर, उनका प्रसिद्ध "काशी शास्त्रार्थ" सत्य प्रचारार्थ वितरित किया जाता है ॥

-ओमप्रकाशसामवेदी पौरोहित्याचार्य रोटरडम,होलेंड

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक .. 1648

क्कथन

महर्षिदयानन्द ... (...वली) पर आर्य प्रतिनिधि सभा नीदरलेंड के द्वारा 'काशी शास्त्रार्थ' नामक इस ऐतिहासिक पुस्तक का जन कल्याणार्थ प्रकाशन कराया जा रहा है, जो कि स्तुत्य कार्य है व ऋषि के प्रति सभा की सच्ची श्रद्धांजलि है।

महर्षिदयानंद भारतवासी आर्यों के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवजाति के लिये वन्दनीय थे।उनके आविर्भाव से पूर्व संसार में सर्वत्र अज्ञान-अभाव-अन्याय का ही साम्राज्य था। महाभारत युद्ध के उपरान्त आर्यो में आई इस गिरावट से, धर्म व ईश्वर के नाम पर वेद विरुद्ध मूर्तिपूजनादि तरह-२ का पाखण्ड फैला, जिसके परिणाम स्वरूप ही हम आर्य-पुत्र गुलाम-काफिर-कुली आदि कहलाये।यह सब किस प्रकार हुआ? किसने किया? कैसे उस ब्राह्म-धर्म को त्याग कर हम शूद्र-धर्म अपना बैठे? यह बहुईश्वरवाद,जातिवाद,गुरुडमवाद हममें कहां से आ गया? क्या हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि-रामकृष्णादि महापुरुष हमारी तरह अंधविश्वासी,कायर व डरपोंक थे? हममें और उनमें यह जमीन-आसमान का अन्तर कैसे आ गया? वैदिक-धर्म-संस्कृति व आर्यसभ्यता का किसने व क्योंकर लोप किया? इत्यादि इत्यादि प्रश्न अवश्य ही आपके मस्तिष्क में भी उठते होगें,और ये आर्यसमाज व सनातन धर्म में विवाद भी जरूर आपको कुछ तो सोचने पर विवश करते ही होगें।इस सम्बन्ध में जो भी कटु सत्य है उसे मैंने इस लेख में संक्षिप्त रूप से बेहिचक लिखने का प्रयास किय है।यदि यह सत्य किसी पाठक के गले न उतर सके अथवा शंका हो, तो मैं वार्तालाप के सदा ही प्रस्तुत हूं वे अपनी शंका मिटा सकते हैं, अस्तु। मनुस्मृति में लिखा है कि-
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥
अर्थात् मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश, और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है,इसलिये धर्म का हनन कभी न करना,इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।इससे साफ जाहिर है कि धर्म के नाश से ही हमारा नाश हुआ। वह कैसे?

यह प्रायः सभी जानते हैं कि संसार में देवासुर-संग्राम (धर्म-अधर्म में युद्ध) होता ही रहता है।राम-रावणों, कृष्ण-कंसों और पाण्डव-कौरवों के बीच हुये युद्ध भी इसी देवासुर-संग्राम के ऐतिहासिक उदाहरण हैं जो कि, सत्य-असत्य, ज्ञान-अज्ञान,विद्या-अविद्या व प्रकाश-अन्धकार आदि परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की लड़ाई के प्रतीक रहे हैं। जबसे मनुष्यों ने सत्य-धर्म-ज्ञान-विद्या अर्थात् वेदमार्ग का या परमात्मा के आदेश का परित्याग किया, तबसे असत्य-अधर्म-अज्ञान-अविद्या रूप नाना सम्प्रदायों का जन्म होने लगा।जनता, चारवाक,वाममार्गी, जैन-बौद्ध, शैव-शाक्त, वैष्णव, तांत्रिक,पौराणिक,अघोरी किरानी-कुरानी आदि मतों में बँटकर,धर्म के नाम पर हिंसा,पशुबलि,मद्य-मांस-मुद्रा-मैथुन, मारण-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण, घृणा-द्वेष, ऊंच-नीच, भेद-भाव, आदि अनेक कुरीतियों में जकड़ गई।लोगों को आकर्षित करने, धोखा देने के लिये तरह-तरह के नकली देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बना सजा कर मंदिरों में धर, पूजने पुजवाने लगे।इन सबने अपने को ठीक व अन्य सबको झूठा बताया।इस अन्धकार के युग में ही एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में व जन सामान्य को बहका कर अपना अनुयायी बनाने की धुन में मनघड़न्त व नकली ग्रन्थों की रचना इन पोपों ने ऋषि-मुनियों राजा महाराजाओं के नाम पर करके, धर्म व ईश्वर की आड़ लेकर मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना दिया था। इस प्रकार से वेद धर्म का ह्रास हुआ। इन मतवादियों ने ईश्वर और धर्म के नाम पर हर प्रकार का अत्याचार किया। वेदमन्त्रों के उल्टे अर्थ करके जन सामान्य में वेद के प्रति घृणा उत्पन्न की।जिन वेदों में सत्य सनातन शाश्वत सब वेद विद्याओं का प्रकाश है,उन्हें कलंकित कर पौराणिक मिथ्या मान्यताओं का ब्राह्मण उपनिषद स्मृत्यादि ग्रन्थों

में प्रक्षेप किया।वर्णाश्रम-व्यवस्था के वैदिक स्वरूप को भ्रष्ट कर व मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभावों की उपेक्षा कर,इन धार्मिक ठेकेदारों ने अधिकांश हिन्दुओं को पठन-पाठन-यज्ञ संस्कार आदि से वंचित किया, उन्हें दलित-पतित-अन्त्यज-भंगी-चमार-कसाई-नीच बनने को मजबूर किया।उनसे पशुओं सा व्यवहार किया।उनके मनों में मिथ्या भय भर दिये। इस प्रकार हिन्दुओं का ८० प्रतिशत हिस्सा शोक से ग्रस्त हो शूद्रत्व को प्राप्त हो गया। इन शूद्रों को सुनाने व मन बहलाने के लिये,विषमिश्रित मनघड़न्त १८पुराण व रामायण महाभारत की अलौकिक कथायें बाँचने की परिपाटी चलाई।इस भोले अपठित शूद्र वर्ग के आकर्षणार्थ अपनी कपोल कल्पित कथाओं की नकली नकलें ये विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बनने लगी व पुजवाई जाने लगीं।ब्राह्मण वेदादि सच्छास्त्रों को छोड़ कर कथा सुनाने व मूर्तियाँ पुजवाने वाले पुजारी, देवलक, भोजक, पुराणपाठक-श्रावक, महाब्राह्मण और सूतजी (शूद्र) कहे जाने लगे।पर ये अज्ञानी स्वयं को ब्राह्मण ही कहते रहे,व अब भी कहते जाते हैं।इन्हें पता भी नहीं रहा कि मनुजी का क्या विधान है-
"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥"
बस, उपर्युक्त शूद्र धर्म को कालान्तर में ये वेदानभिज्ञ 'सनातन धर्म' नाम से कहने लगे। जबकि वेदादि शास्त्र प्रतिपादित ब्राह्म-धर्म ही सनातन धर्म होता है,वेदविरुद्ध तो साक्षात् अधर्म ही कहा गया है।खैर, घोर अविद्या का युग था।इन पोपों ने क्षत्रियों को भी मूर्ख बनाने,२४ अवतारों की लिस्ट बना डाली, उनमें यह भावना भरी कि तुम्हें चिन्ता नहीं करनी है, पाप बढ़ने पर,धर्म की ग्लानि होने पर, भगवान स्वयं अवतार लेते हैं धर्म की स्थापना करते हैं व दुष्टों का नाश करते हैं।गीता मूलमंत्र को विकृत करके १३ से १७ तक के अध्याय बड़ी चतुराई से प्रक्षिप्त करके ७० श्लोकी गीता को, ७००श्लोकों वाला बना दिया,और क्योंकि महाभारत युद्ध में १८अक्षौहिणी सेना थी, युद्ध भी १८ दिन चला था,महाभारत में पर्व भी १८ ही हैं, तो गीता को भी १८अध्यायों वाली बना दिया गया। तात्पर्य यह है कि इस मूर्तिपूजा और अवतारवाद ने भारत की गरिमा मिट्टी में मिला दी।

जन सामान्य को वेद से विमुख करने में रावण-वंशी निम्न आचार्यों का किया मिथ्या वेद-भाष्य भी बड़ा कारण बना।वे आचार्य सायणाचार्य, महीधराचार्य, उव्वटाचार्य थे।इन यवनाचार्यों के अनुसार वेदों में उपर्युक्त सभी बुराईयाँ वर्णित हैं।इन्हीं यवनाचार्यों के वंशज शिष्यों में शंकराचार्यों के अतिरिक्त कुछ महाधमाचार्य जैसे-माधवाचार्य और उनके बफादार बेटे प्रेमाचार्य, वीराचार्य,रामेश्वराचार्य से, धर्म-द्रोही आज भी भारत में पाये जाते हैं, जो कहते हैं कि(१) वेद चार नहीं हजारों हैं,(२) स्त्री-शूद्रों को वेदादि शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है(३)उनमें गोमांसाहार, मद्यपान, पशुबलि, आदि विधान हैं(४) वर्णव्यवस्था कर्म से नहीं जन्म से है(५)मूर्तिपूजा,अवतारवाद, मृतकश्राद्ध,बालविवाह सतीप्रथा, जात-पात, ऊंचनीच, सब सनातन धर्म है, वेदविहित हैं।(६)पुराण वेदों से भी प्राचीन हैं व वेदों में राम-कृष्णादि मनुष्यों का इतिहास लिखा है।(७)हम आर्य नहीं हैं हिन्दू हैं,'नमस्ते' बोलकर किसी का सम्मान करना पाप है,राम-२ कहना सनातन धर्म है। (८)जीव ही ब्रह्म है,ब्रह्म असंख्य टुकड़ों में बँट कर जीव रूप में पैदा होता रहता हैआदि। (९)राणाप्रताप का भाला व कृष्ण का सुदर्शन चक व शिव का धनुष बहुत भारी था,उन्हें कोई दूसरा नहीं चला सकता था,न उठा सकता था इसलिये राम-कृष्ण-प्रताप ईश्वर का अवतार थे(१०)राम-कृष्ण का एकबार नाम लेने से, गंगा में एक डुबकी लगाने से, जन्म-जन्मान्तर के पाप छूट कर मुक्ति प्राप्त हो जाती है (११) पुराणों में लिखी एक-२ बात हमारे सनातन धर्म का सच्चा इतिहास है, उनको सुनने से सब मनोकामनायें पूर्ण होती हैं(१२)पौराणिक पंडित कितना भी गिरा हो,मूर्ख हो उसी को गुरू समझना चाहिये, पैर

धोकर पीना चाहिये तथा उसके संकेत मात्र से, निज तन-मन-धन स्त्री आदि, गुरुसेवा में समर्पित कर देना चाहिये(१३)ग्रह-पंचक, भूत-प्रेतादि को शान्त करने पशुबलि दें, व पौराणिक ब्राह्मणों को सोना चांदी का दान करें(१४) हर छह महिने अथवा वर्ष में, मरे बाप-दादों के नाम(अपनी सालभर की कमाई)भोजन-अन्न-वस्त्र-सोना-गाय-पैसा जन्म के ब्राह्मणों(शूद्रों)को नियमित रूप से देते रहना चाहिये(१५)यदि गलती से भी स्त्री व नीच जाति वाला वेदमन्त्र बोल दे या सुन ले, तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये, तथा कान में शीशा पिघला कर डाल देना चाहिये(१६)इस कलियुग में जप-तप-ध्यान-योग-यज्ञादि सब बेकार हैं,राम नाम के रटने से ही मुक्ति हो जाती है(१७)सनातन धर्म में सती का बड़ा महत्व है,पति के साथ जलकर मरने से निकृष्ट-स्त्री योनि से छुटकारा मिल जाता है,और जलने में बिल्कुल भी कष्ट नहीं होता (१८)देवी-देवताओं की मूर्तियां पूजने से संसार के सब ऐश्वर्य मिलते हैं,परमात्मा के ध्यान से नहीं (१९)आर्यसमाजी तुम्हारे इस सनातन धर्म को नहीं मानते हैं,अतः उनसे दूर ही रहना चाहिये (२०)धर्म के मामले में अकल की दखल नहीं होती है,तर्क करोगे तो सनातन धर्म से पतित हो जाओगे आदि।

इस प्रकार के विचारों से ये लंठाचार्य अधिकांश हिन्दू जनता को गुमराह कर हर प्रगति में बाधा बने हुये हैं।हजारों वर्षों से ऐसे पोंगा-पंथी उपरिलिखित बातों से अपना पेट भरते आ रहे थे।इन्होंने देश की अधिकांश सम्पत्ति अपने पेट में तथा अपने निवासगृहों(मन्दिरों)में लगाई व सेठों,क्षत्रियों को बहकाते रहे।इस धन के दुरुपयोग से ८० प्रतिशत हिन्दू दरिद्र हुये,पठन-पाठन की व्यवस्था गई मूर्ख बने,लंठाचार्य ऊटपटांग कथायें सुनाकर,इनके स्वामी बन गये।अविद्या-अंधविश्वास-मूर्खता की पराकाष्ठा आई, विदेशी लुटेरे सोमनाथ से मन्दिरों की अथाह सम्पत्ति के लालच से आक्रमण करने लगे। अन्त में इन्हीं लंठाचार्यों के विश्वासघात से भारत की सम्पत्ति के साथ-२ उसका गौरव भी लुट गया।हिन्दू गुलाम हुये, करीब ७०० वर्ष तक इस्लाम की तलवार बजती रही व ब्राह्मणों, ऋषियों का देश कश्मीर मार-२ मुसलमान बनाया गया।वर्तमान के ये भारत व पाकिस्तान के ३० करोड़ मुसलमान राम-कृष्ण के ही वंशज हैं। इतना ही नहीं हमारी लाखों मां बहिनों की इज्जत लुटी, वर्णसंकरता पैदा हुई, वैदिक धर्म-संस्कृति का रहा सहा स्वरूप भी नष्टप्राय हुआ।इन लंठाचार्यों ने धर्म को नष्ट किया, वृषल बने, स्वयं डूबे देश को भी डुबाया।

इस घोर पराधीनता के काल में महर्षिदयानंद ने धर्म की स्थापना की व समस्त बुराइयों की जड़ मूर्तिपूजा को बताया व प्रबल खंडन किया।हजारों वर्षों से जनता को गुमराह करने वाले मत सम्प्रदायियों की जमकर खबर ली।संसार के सब वेद विरोधी मतों में खलबली मच गई।उस सत्य के पुजारी, वेदोद्धारक, महामनीषी ने सब पाखंडों की जड़ काशीनगरी पर अपनी दृष्टि गड़ाई।वहाँ के पडितों में, वेदादि शास्त्रों के प्रति कितना अज्ञान था, इसका अन्दाजा प्रसिद्ध पौराणिक पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा सन् १९११ ई० में 'मर्यादा' नामक पत्रिका के भाग ३ पृ०१५२-१५९ में लिखे निम्न लेख से लगता है-

"काशी का अभाग्य और भारतवर्ष गवर्नमेंट का अभाग्य ,नहीं तो कोई बालशास्त्री या कोई बापूदेव वेदों का भी निकल आता और जो खोज जर्मनी में हुई, वे काशी में होतीं और न वह ही समय आता जब एक वेदपाठी गुजराती सन्यासी काशी के पंडितों को 'खसूची' बनाकर छोड़ जाता जैसा कि आगे लिखा जायेगा।,,

यहाँ पर वेदपाठी गुजराती से तात्पर्य महर्षि दयानंद सरस्वती से है और प्रसंग काशी शास्त्रार्थ का है।जब ऋषि काशीवासी पंडितों से प्रश्न पूछते थे, तो वे आकाश

की ओर देखने लगते थे(खसूची) अथवा बगलें झाँकने लगते थे।बालशास्त्री व्याकरण के पंडित थे और बापूदेव शास्त्री ज्योतिष के प्रसिद्ध पंडित थे। काशीशास्त्रार्थ का विवरण देते हुये श्री गुलेरी जी आगे लिखते हैं--

"इन्ही दिनों स्वामी दयानंद धूम्रकेतु की तरह काशी में आ पहुंचे और अक्षोभ्य समुद्र की सतह उनके आने से पैंदे तक हिल गई।लोग विस्मय से आंख फाड़े रह गये कि स्वामी जी का जहां मन्त्रपाठ, कंठस्थ करने वाले पंडितों से मिलता है,वहां उन्हें अपने भाष्य व्यापी व्याकरण के ऊपर स्थित अर्थज्ञान से गूंगा कर देता है और जहां नव्य व्याकरण मिलते हैं, वहां वह "घटो घटः" का तुषकण्डन छोड़कर उन्हें सीधा व्याकरण की चकाबू में गोते खिलाता है।,,

इस शास्त्रार्थ में बुरी तरह पराजित हुये काशी के पंडितों ने आगे कभी भी शास्त्रार्थ करने की हिम्मत न की।स्वामीजी बार-२ काशी आकर विज्ञापन करते रहे, कहते रहे कि कि यदि किसी को अब भी मूर्तिपूजा का कुछ प्रमाण मिला हो तो वह आये और दिखाये। परन्तु ऋषि के सामने कोई न आता था।हां, स्वामीजी के काशी छोडते ही वे झूठी पुस्तकें छपा कर अपनी झूठी प्रशंसा अपने आप करते रहते थे,जैसे कि माधवाचार्य प्रेमाचार्य आदि आज भी करते हैं। इसी प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ की विशुद्ध झांकी इस पुस्तक में वर्णित है जिसमें हमने अपनी ओर से कोई मिलावट नहीं की है।एक और बात भी हम यहां लिखना आवश्यक समझते हैं कि, जिन्होंने भी माधवाचार्य-प्रेमाचार्य रचित झूठी व दुराग्रह ग्रस्त पुस्तकों को पढ़ा है वे ही प्रायःआर्यसमाज और महर्षिदयानंद के प्रति दुर्भावना रखते हैं, क्योंकि उपर्युक्त लोगों का उद्देश्य 'सत्य सनातन वैदिक धर्म' का प्रचार रोक कर पौराणिक कुरीतियों में हिन्दुओं को जकड़े रहना है। इन लोगों ने ऋषिदयानंद को जो गालियां लिखीं हैं,उनका उत्तर यदि गोलियों से दिया जाय तो भी कम होगा। यह तो हम ऋषि के सैनिकों की विशालहृदयता व उदारता ही है कि इनके कुकृत्यों पर ध्यान ही नहीं देते हैं, क्योंकि हमें पता है कि सदा 'सत्य-धर्म' की ही जय होती है। अस्तु, इनकी 'काशी शास्त्रार्थ विजय' नामक झूठी पुस्तक में ये लोग स्वयं को शास्त्रार्थ महारथी शास्त्रार्थ 'पंचानन' आदि लिखे हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि आज तक इन्होंने शास्त्रार्थ किया ही नहीं, सिवाय जनता को भड़काने, छल-कपट करने व झूठ बोलने के।आर्य विद्वान के सामने इनकी क्या स्थिति होती है,यह यदि आप जानना चाहते हैं तो इन्ही के एक भाई महंत सीतारामदास जी का लेख जोकि इसी पुस्तक के पिछले पृष्ठ पर छपा है आप पढ़ सकते हैं।

अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि जिस आर्यसमाज ने भारत को स्वतंत्रता दिलाई, व हिन्दूसमाज की कुरीतियों अंधविश्वासों का निवारण कर, सत्य सनातन वैदिक धर्म संस्कृति की रक्षा की, उससे शत्रुता रखने वाला हर मनुष्य कृतघ्न ही है। जिसने करोड़ों दलित हिन्दुओं को उठाया, सब अधिकार दिलाये, उस आर्यसमाज के संगठन से जुड़कर हम सबको अधर्म का नाश व धर्म की स्थापना करने में हाथ बँटाना चाहिये।महाधमाचार्यों की तरह दुर्भावना न रखकर सत्य के प्रति सद्भावना ले आयें तो ही विश्व का कल्याण होगा। आओ:अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करते चलें।प्रत्येक प्रगतिशील मनुष्य को सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये॥स्वामीजी के शास्त्रार्थ का यही उद्देश्य था॥

ओमप्रकाश सामवेदी पौरोहित्याचार्य

Van Bijnkershoekweg -46 3052 pc R,dam. TEL-010-4182538.

भूमिका

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ मि० कार्तिक सुदि १२ मङ्गलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी" का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूँ।

इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजनादिखण्डनविषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था, उनको वेदप्रमाण से मण्डन करना उचित था, सो कुछ भी न कर सके क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते ? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है, ऐसे हुए पश्चात् भी जिस-जिस ग्रन्थान्तर में से जो-जो पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे, सो भी सिद्ध न कर सके, पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था, वह भी न हो सका, पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची है, इसमें स्वामीजी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर-उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक-ठीक विदित होता है ?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सबके सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है, उस पर स्वामीजी ने उसको विशेषवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की, जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलनेवालों को न रोकें ? क्या स्वामीजी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकनेवाला न हुआ। और क्या एक दम उठ के चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिये

काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशीजी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादिमूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिए पाई हो तो सभ्यता-पूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो व सुनो, इस पर भी कुछ नहीं करते, यह भी कितने निश्चय करने की बात है। परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ?

इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है, वही ठीक है। और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९३६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे—सत्य ठहरती है।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था, उस पर स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उसके उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ, क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो-जो स्वामीजी कहते हैं, वह-वह सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं। और जहाँ छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है, वहाँ-वहाँ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामीजी का मत नहीं, स्वामीजी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं, वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और 'ब्राह्मणग्रन्थ' जीवोक्त अर्थात् ऋषि-मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं, वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं और मन्त्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वे तो स्वतःप्रमाण हैं ॥

संवत् १९३७
सन् १८८०

प्रबन्धकर्ता, वैदिक यन्त्रालय,
काशी

अथ काशी-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्य-शास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्य-शास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति—"वेदेषु पाषाणादिमूर्त्तिपूजनविधानं शैव-शाक्तगाणपतवैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मा-देतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धा-प्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति ।"

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं, जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं। उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है, सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि "पाषाणादि मूर्त्ति-पूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि सम्प्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है, इससे ये सब मिथ्या ही हैं, कदापि इनका आचरण न करना चाहिए। क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है, ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है।"

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र-कुत्रचित् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितै-र्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः, परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादि विधानं न लब्धम् ।

इस हेतु से उक्त स्वामीजी हरद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची, बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया, परन्तु पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहा-राजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है। इससे काशीराज महाराज ने

बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके, करना चाहिये ।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थ-करणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः ।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

निदान कार्तिक सुदी १२ सं० १९२६ मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामीजी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

महाराज ने कहा कि वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं, पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना, पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्वि-चारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तब दयानन्द सरस्वतीजी ने कहा कि पुस्तकों के विना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता, भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हो, हम लोग उसका मण्डन करेंगे ।

पुनः स्वामीजी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो, वही एक पण्डित मुझसे संवाद करे ।

तदा पण्डित रघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामीजी से एक-एक पण्डित विचार करे ।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः, तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

पुनः सब से पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामीजी से विचार के हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए।

स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति।

उन्होंने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं, उन सबको वेदों का प्रमाण ही है*।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदेषाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम्, नास्ति चेद्वद नास्तीति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखाइये, और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं, उसके प्रति क्या कहना चाहिये ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः, कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः। मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है, इस निमित्त से इसका विचार पहिले ही करना चाहिये, क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है। और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं, इससे इनका भी प्रमाण है, क्योंकि जो-जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं, उनका प्रमाण नहीं होता।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहाँ मूल है ?

---

* इससे यह समझना कि स्वामीजी भी वर्णाश्रमस्थ हैं, वेदों को मानते हैं।

स्वामिनोक्तम्—'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया' इति सामवेदे* ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जो-जो मनुजी ने कहा है, सो-सो ओषधों का भी औषध है, ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है* ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान-तिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं, व्यासजी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है, इस पर विचार करना न चाहिये ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् ।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

इस पर स्वामीजी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी, इससे न कहा, जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या आपको सब कण्ठाग्र है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हाँ हमको सब कण्ठस्थ है ।

---

* पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

* यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है, परन्तु स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है, वही धर्म कहलाता है ।

स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यस्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह आपका संस्कृत है इसका क्या प्रमाण, श्रुति स्मृति कहिये ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः" इति जैमिनिसूत्रमिति* ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो "चोदनालक्षण अर्थ है, सो धर्म कहलाता है ।" यह जैमिनि का सूत्र है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् ।

स्वामीजी ने कहा कि यह सूत्र है, यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है, वहाँ भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये, जहां प्रेरणा होती है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानीति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं, कहिये ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है ।

---

* इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कतो न पराजय इति बोध्यम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वह कैसा है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि धर्म्म के तो दश लक्षण हैं, आप एक ही क्यों कहते हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति* ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन से दश लक्षण हैं ?

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि—धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं, फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानीति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्- त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।।

तब बालशास्त्री ने कहा कि हां, हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

---

* अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं बोध्यम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्–प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है ।

तदा तैरुक्तम्–क्वास्तीति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि कहाँ पर है ?

तदा स्वामिनोक्तम्–सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है ।

तदा तैरुक्तम्–किं च तद्वचनमिति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है ?

तदा स्वामिनोक्म्–देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्यादीनि ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान और प्रतिमा हँसती है इत्यादि* ।"

तदा तैरुक्तम्–प्रतिमाशब्दस्तु वेदे※ वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है, फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ।

तदा स्वामिनोक्तम्–प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति, प्रतिमा शब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है, इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये, इसका क्या अर्थ है ?

तदा तैरुक्तम्–यस्मिन् प्रकरणेऽयं मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति ?

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है, उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

तदा स्वामिनोक्तम्–अथातोद्भुतशान्ति व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य आतारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः, एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम् । अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्ति-

---

* यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहाँ भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।

※ अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबहित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम ।

विहिता । यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः दिशः शान्ति कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता, ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता, ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्, ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं, इनमें से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहियें, इसके अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें, ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है । इस क्रम करके अद्भुत शान्ति का विधान किया है । जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है, सो मन्त्र मृत्युलोक विषय नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है, सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्व दिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परम-स्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है । इस पर सब चुप रहे ।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोपशान्तिर्भवतीति ।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है, उस-उसकी शान्ति करने से अद्भुत देखनेवालों के विघ्न की शान्ति होती है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितृणीति ।

तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टृणि भवन्ति, न तु दर्शयितृणि परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं, दिखाने वाली नहीं परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र" इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ न कहा ।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादि गमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

फिर पण्डित शिवसहायजी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तब शिवसहायजी चुप हो रहे ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से ?

किं न्यायाशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ।

क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्--कोस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि।

तदा स्वामिनोक्तम्--कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्--मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति।

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही हैं, वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिये।

तदा स्वामिनोक्तम्--यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु* दृश्यते तथा पाषाणादिब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते, पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों※ में देखने में आते हैं, वैसे "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता, फिर क्योंकर इसका ग्रहण हो सकता है ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्--'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च' इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयञ्च" इति, इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्--वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण है।

---

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम्।

※ यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है, स्वामीजी का नहीं क्योंकि स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते।

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्-पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ।

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

तदा स्वामिनोक्तम्-पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित् पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता, यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये ।

ततो माधवाचार्य्येणोक्तम्-पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति, कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है, परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि" इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति" यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा—हाँ प्रमाण है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सबका प्रमाण आया।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है, औरों का नहीं।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इसका विचार हो।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य[1] द्वे पत्रे निस्सारिते, अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे[2] निकाले, और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है?

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति।

स्वामीजी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति"।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति'।

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति।

तब बालशास्त्रीजी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं, परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है।

---

१. इदमपि पण्डितानां मतम्, नैव स्वामिन इति वेद्यम्।

२. यह भी उन्हीं का मत है, स्वामीजी का नहीं क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ?

"अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न' इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है, क्योंकि [गीता के] "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं, दूरस्थ नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है, इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—'इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है—सुनिये "इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः[1] इत्यादि में कहा है ।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि वेदेष्वयम्पाठो[2] न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति ।

---

१. [छा० उ० प्रपा० ७ ख० १ प्रवाक् ४ में ऐसा पाठ है] सं० ।

२. इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यम् ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वेद[1] में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो, तब सब चुप हो रहे।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि व्याकरण जाननेवाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति।

तब बालशास्त्रीजी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है, यदि जानते हो तो इसके उदाहरण [प्रत्युदाहरण] पूर्वक समाधान कहो ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति।

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य[2] निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते, अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम्।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते।

माधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों[3] के निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहाँ 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है। यहाँ पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामीजी ने कहा कि पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामीजी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो।

---

१. यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामीजी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते।

२. एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति।

३. पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे, वेदों के नहीं।

स्वामीजी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिये।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने दयानन्द स्वामीजी के हाथ में दिये।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान्। तत्रेदं वचनं वर्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति"।

इस पर स्वामीजी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे। [वहां इस प्रकार पाठ था "यज्ञ समाप्ति पर दशवें दिन यजमान पुराणविद्यावेद का श्रवण करे'] इस में अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि—

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या, कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम्। तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम्। पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति। यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति, क्वाप्येवं वेदेषु[1] पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता।

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है, इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा इसलिये यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं। पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है, इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते, क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में[2] कहीं ऐसा पाठ नहीं है इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" ज्यों ही यह उत्तर कहना चाहते थे कि—

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतोदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत्। ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः। एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति।

---

१. इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति।

२. यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामीजी का मत नहीं है।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति ।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति । तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्ति-पूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् ।

येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्त-वैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्व-पुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तत्थ्यमेवेति ।।

विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं ।

तबे सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये, इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय[1] हुआ । परन्तु जो दयानन्द स्वामीजी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला, फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ !!

।। इति ।।

३-हिन्दी-संस्कृत-वेद-मन्त्रोच्चारण-यज्ञ-संस्कार सीखें ।
४-सत्संग-धर्मचर्चा-प्रवचन-धार्मिकशंकासमाधान करें ।
५-योगासन, भारतीयव्यायाम, यौगिकक्रियायें जानें ॥
(आपभी इन गतिविधियों को फैलाने बढ़ाने में आर्य प्रतिनिधि सभा की मदद करें, पत्रिका के सदस्य बनें)
ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँशान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

१. क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामीजी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं क्योंकि स्वामीजी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्षवालों का पराजय और सत्यवालों का सर्वदा विजय होता है ।।

काशी

☐ धीरेन्द्र वीर

स्थान यदि दिन, ये दीप-उत्सव,
धर्म, ज्ञान-विज्ञान शुचि धारा।
एक अथाह साहित्य—सागर,
हुआ किन्तु निर्मल जल खारा॥
द्विज - कुल - कुसुम, संत-केसर की,
क्यारी है भीनी सी काशी;
पिपासु जन परिव्राजक आते,
सहज श्रद्धालु और विश्वासी।
जानता है तृषित जिज्ञासु ही ज्ञान-नीर का महत्व।
भँवर में भ्रम की फँसे से पूछिये तीर का महत्व।
नगर एक, फूट रहे कितने,
साहित्य, कला, विज्ञान झरने,
जिज्ञासु, विटप विद्या का आते,
मधु - फल - रस आस्वादन करने।
कहीं-कहीं दिखती कालिख भी,
चंदन का माथे पर टीका,
विलासिता का जगमग उत्सव,
हो गया अचानक क्यों फीका?
योग विशिष्ट क्रियाओं से चित्त दर्पण हुआ ऋषि का
अब पवन-वेग से काशी में पदार्पण हुआ ऋषि का॥
सहृदय जन-जीवन की बढ़कर,
कम्पित पार लगाने नौका,

लिये आ गये काशी नगरी,
मधु-मुस्कान-पवन का झोंका।
सुगंध सी चर्चा फैल गई,
नगर के हाटों व द्वारों में,
वह सत्य-सुधा बरसाता है,
पथ जिसका है अंगारों में।
जन-विरोध-जंगल में वह बाघ समान गरजता है।
सुनकर सन्न हुआ पाखण्ड-हिरण-हृदय लरजता है।
दर्जनों, सैकड़ों से बढ़ती,
हो गई संख्या हजारों में,
सुमन देख मुरझाने लगते,
निज पण्डों ग्रीवा-हाटों में।
महाराज के उपदेशों से,
उर-उपवन काशी था सुरभित,
दृश्य देखते कौतूहल से,
जन-दृग हो जाते विस्फारित।
तिलिस्म क्या है ? कंठ में जो अभिभूत कर लेता है।
वयस्क-बाल-वृद्ध सभी को वशीभूत कर लेता है।
विराजमान पाखण्ड जिस पर,
लगा धरा का हिलने आँचल,
ज्वार उठाते उपदेशों में,
जन-अम्बुधि में होती हलचल।
भगीरथ प्रयत्न प्रवचनों में,
द्विज सब हों कैसे आंदोलित ?
वे प्रवृत्त हो भ्रम कार्यों में,
आसन पर जड़ हुए सुशोभित।

विमुख कर रहे जन को वे मूर्त्ति-पूजा, पुराणों से।
आ द्विज शास्त्रार्थ-समर में, विद्ध हो गये बाणों से।
"कराये शास्त्रार्थ आयोजित,
भूप ! अब ईश्वरी नारायण,"
लगे करने जब कहा ऋषि ने,
सब द्विज चालीसा पारायण।
"दयानन्द पूछा करता है,
द्विज-दल से प्रमाण वेदों के,
ढाल ढूँढ लें हम सब ऐसी,
जो खड्ग-प्रहारों को रोके।"
पंडितों को नृप से मिल गई, तैयारी की अनुमति।
ऐंठकर तनाव से तन गई, उनकी जैसे धनुमति।
निर्भय हो दे रहा चुनौती,
लगे लगाने पण्डित अटकल,
तर्क-असि में धार है कैसी ?
ज्ञान-करों में है कितना बल ?
पहुंचते पण्डित पास परन्तु,
पैठ सका पानी में कोई,
दिनकर के उस सम्मुख जाकर,
द्युति अपनी सबने ही खोई।
चमकदार खिल गई सर्दियों में सुखद धूप के सम।
विद्या-वारि में निमज्जित थे, गहन ज्ञान-कूप के सम।
इस भँवर में से शास्त्रार्थ के,
तरी पार किसकी उतरेगी ?
ललाट चूमकर विजय-रूपसि !
किसे भुजाओं में भर लेगी ?

गली - पाठशालाओं - कूचों,
सब घरों, मन्दिरों, घाटों में,
चीख रही सारी बस्ती में,
औ' गहराये सन्नाटों में ।
गूँज सुनाई देती काशी के कोने-कोने में ।
भेद-भान् होगा शीघ्र ही तांबे और सोने में ।
रात-रात भर पण्डित रटते,
सभी दृष्टांत वेदों, स्मृति के,
बुद्धि-अल्प से समझ न पाते,
गूढ अर्थ पर अनुपम कृति के ।
पड़ा है पण्डित जानते थे,
सत्य-सिंह से उनका पाला,
भाँति मकड़ी के मस्तिष्क से,
वे रहे बुन षड्यन्त्र - जाला ।
थे किन्तु ऋषि निश्चित आत्मा पर अटल भरोसा था ।
इस सृष्टि-नियामक परमात्मा पर अटल भरोसा था ।
माप समय की लगती जन को,
शिला-स्तम्भ अशोक सी ऊँची,
निर्णय की सत्य के निर्णायक,
घड़ी शीघ्र ही वह आ पहुंची ।
लगे उद्यान आनन्द में ऋषि,
नृप, पण्डित हेतु तीन आसन,
कोतवाल रघुनाथ नगर ने,
दायित्व सम्भाला अनुशासन ।
बूँद बूँद की परस्पर संधि से ज्यों बनता सागर ।
उस उद्यान में आ सिमटा लहराता जनता-सागर ।

आ रहे शास्त्रार्थ को पण्डित,
रहे झूल सिर पर चन्द्र-चँवर,
भाँति-भाँति रस-सेवन कर भी,
सूखते भयाऽक्रान्त अधर।
एक कौपीनधारी आये,
महर्षि गज सी मन्थर गति से,
सुदर्शन-सुविभक्त काया को,
लगे निरखने दर्शक रति से।
कसी कोशिकाओं का दृढ़-पथ भूले हुए उदर थे।
नर्म द्विजों के फुलकों के सम फूले हुए उदर थे।
एक ओर ऋषिराज, उधर थी
सभी द्विजों की पूरी सेना,
कला-निपुण वे जान चुके थे,
तर्क-तरी आँधी में खेना।
मयंक को मन्च पर द्विजों ने,
कई उपग्रहों सा घेर लिया,
रही भक्त प्रार्थना अनसुनी,
था नृप-मुखिया ही जब छलिया।
वस्तुतः उभय पक्षों के हेतु, अग्नि परीक्षा-वेला।
अन्ततः वह समाप्त हो गई, विषम प्रतीक्षा-बेला।
आरम्भ हुआ शास्त्रार्थ कभी
द्रुत कभी विलम्बित सी लय में,
पास किसी के वेद नहीं थे,
विवाद मुख्य था जिस विषय में।
शास्त्र सभी नहीं मँगाये थे,
जानबूझकर नृप काशी ने,

प्रश्न ताराचरण से पूछा,
उस सच्चे शिव विश्वासी ने:—
"मूर्त्ति पूजा के समर्थन में, दें प्रमाण वेदों का।"
पंक में गहरे प्रारम्भ में, फँस गई बुद्धि - नोका।
अति पण्डित सेना थी सयत्न,
सुरक्षित रखने में सजग, व्यस्त,
तीव्र प्रथम प्रश्न आक्रमण से,
वह हुआ दर्प का दुर्ग ध्वस्त।
दृश्य देखकर राजा कुढ़ते,
ऊपर से बने हुए तटस्थ,
विशुद्धानन्द बोले आकर,
"सभी ग्रन्थ मुझे हैं कण्ठस्थ।"
कहा धर्म के ही उन्होंने, हैं, दस लक्षण बता दें।
बता सके न और कुछ तो, बस यही तत्क्षण बता दें।
हाय! दिया स्मृति ने साथ नहीं,
हुए मौन, मिला नहीं उत्तर,
"हैं हम शास्त्रों में पारंगत"
कह हुए बालशास्त्री तत्पर।
"बतायें कृपया, बहुत अच्छा!
लक्षण अधर्म के आप समस्त"
हुए शास्त्री मौनावलम्बी,
हुआ उत्साह निमिष में पस्त।
पा सत्य-सूर्य का प्रखर ताप, वारि से आप बनकर।
पण्डितों के उड़ने लगे भ्रम, छिन्न हो भाप बनकर।
हो गये कुछ समय तक पण्डित,
जड़वत् जिस भाँति भित्ति-चित्र थिर,

केश संभाले हुये सुगन्धित,
हुए माधवानन्द उद्यत फिर,
"हुई शब्द प्रतिमा की वेदों
में, कई स्थानों पर पुनरुक्ति,
क्यों करते हैं इसका खण्डन,
स्वयं है जब वेदों की उक्ति।
है उल्लिखित पुराण शब्द भी स्वामीजी! वेदों में।"
ऋषि मंद स्मित से बोले, "किन्तु कई रूप, भेदों में।
शब्द पुराण इनमें विशेषण,
काल पुरातन का है वाची,
अर्थ सनातन का ही बोधक,
बात कही ये परखी-जाँची।
हंसी नहीं थमती है पढ़कर,
सहस्र गप्प - गुब्बारे छोड़े,
असम्भव पुराणों में बातें,
एक सिरे से भरे गपोड़े।
समर्थन में इसके एक वेद-प्रमाण नहीं मिलता
कहीं लिखा पूजना चाहिए पाषाण नहीं मिलता
रहा चार घण्टे तक चलता,
ऋषि व पंडितों में शास्त्र-समर,
अकाट्य सब थी ऋषि युक्तियाँ,
हुआ इतिहास में नाम अमर।
सत्य-तेज से नतमस्तक हो,
लगी होने द्विज - आभा क्षीण,
पाण्डित्य हुआ हार संकुचित,
विविध थे इतने तर्क-प्रवीण।

मलिन दिवाकर के सम्मुख पड़ गये वो दीप के सम
तर्क-तोप से वर्तुल में घिर गये वो द्वीप के सम
घन तिमिर भला कैसे करता,
दिनकर का प्रगाढ आलिंगन,
अदृश्य हो गई तिमिर-काया,
पाकर एक विद्युत का चुम्बन।
मन्द पवन से पण्डित करते,
हिमालय-प्रकम्पन का प्रयत्न,
चमक सभी से अधिक रहा था,
लाल टंकारे का वह रत्न।
हर तर्क असत्य भेदता ज्यों तीव्र-तीक्ष्ण तीर चला
द्रुत वचन-विद्युत से वह अति विस्तृत तम-वक्ष चीर चला
ज्ञान अपरिमित की ऊष्मा का,
मस्तिष्क उत्तम था सुचालक,
दौड़ रही ऊर्जा रग-रग में,
रुधिर स्वस्थ जिसका संचालक।
तेज चमकता नासापुट पर,
प्रदीप्त ललाट पर ज्ञान-अनल,
तर्क-तीर बौने तिनकों से,
द्विजों के मार्ग में जाते जल।
एक जल-प्रपात का वेग जिसे रोक सका न कोई
तर्क की वो पैनी वेग जिसे रोक सका न कोई

—क्षेत्रीय उपाध्यक्ष
नैनीताल जिला पत्रकार संगठन, नैनीताल

मूर्ति-पूजा पर ३१ प्रश्न

(१)मिट्टी पत्थर धातु आदि की मूर्तियों की पूजा करने से मूर्ति प्रसन्न होती है या ईश्वर खुश होता है ? पौराणिकों के मन्दिरों में रखी हुई मूर्तियां जब परमेश्वर की मूर्ति नहीं हैं सभी जन्म लेकर मरने वाले मनुष्यों के शरीरों की आकृतियों की नकल में बनाई गई हैंतो इनको परमेश्वर मानकर या परमेश्वर की मूर्तियां बताकर पूजन,बुद्धि विरुद्ध मिथ्याकर्म क्यों न माना जावे ? (२)इन मन्दिरों स्थित मूर्तियों में देखने,सुनने,सूंघने,बोलने,समझने,सोचने तथा स्पर्शानुभव करने की शक्ति है या नहीं ? यदि है तो प्रत्यक्ष में सिद्ध करो ? यदि नहीं है तो इन जड़ वस्तुओं के आगे हाथ जोड़ना प्रार्थना करना, मनोतियां मांगना,उन्हें वस्त्राभूषण पहिनाना,उनके चरणस्पर्श करना व दबाना आदि कर्म निरर्थक एवं व्यर्थ क्यों नही ? क्या इन मूर्तियों को भूख-प्यास-सर्दी भी लगती है?(३)क्या मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्रों से करने से वे चैतन्य हो जाती हैं?या प्राण-विसर्जन करने से मर जाती हैं ? यदि हां, तो किसी मरी मख्खी में भी प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे जिन्दा करके दिखाओ ? यदि इतना भी नहीं कर सकते हो तो मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा का तुम्हारा सारा किया कर्म ढोंग क्यों न माना जावे?(४)सोना,जागना,हंसना रोना यह चैतन्य जीवों का धर्म है वा जड़ मूर्तियों का ? क्या परमेश्वर जो कि निर्विकार है वह भी सोना,जागना,हंसना,रोना आदि विकारों से युक्त होने से विकारी है ? जब नहीं है तो पुजारियों के इन वाक्यों का, भगवान को सुला दो,भगवान को भोग लगा दो,भगवान पर पंखा झल दो,का क्या अर्थ है? (५)सूकर-अवतार की मूर्ति को सूकर का स्वाभाविक भोजन विष्ठा का भोग क्यों नहीं लगाया जाता है? तथा खीर-पूड़ी का भोग लगाकर उस बेचारे पशु का अपमान क्यों किया जाता है? सूकर-अवतार की मूर्ति को लगे भोग के अवशेष को पुजारी क्यों नहीं खाता है? (६)परमात्मा यदि साकार है तो सर्वव्यापक व अनन्त नहीं रह सकेगा।यदि निराकार है तो उसकी आकृति जो कल्पित की जावेगी वह मिथ्या होगी क्योंकि आकृति साकार एक देशीय भौतिक पदार्थ की होती है,सर्वव्यापक निराकार की नहीं होती है।तब बतावें कि निराकार अनन्त सर्वव्यापक नित्य गुण वाले परमेश्वर की आकृति की मिथ्या कल्पना करके,मिथ्या मूर्ति बनाकर उसकी प्रतिष्ठ-पूजा आदि करना भी मिथ्या कर्म क्यों न होगा? (७)जड़ पूजा से जो कि प्रकृति के कार्य रूप की उपासना है,मनुष्य को घोर अंधकार व दुख की प्राप्ति होने की बात जब वेद ने स्पष्ट कर दी है-"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः॥ (यजु०४०-९)अर्थात् कार्य का कारण रूप प्रकृति की उपासना से उपासक को घोर कष्टमय लोकों(स्थिति)की प्राप्ति होती है।तो ऐसा वेदविरुद्ध मूर्तिपूजा का कर्म करना पौराणिकों का अधर्म-कार्य क्यों न माना जावे जिससे उसके लोक व परलोक दोनों बिगड़ते हैं? (८)बतावें कि परमेश्वर क्लेशयुक्त है वा क्लेशरहित है? यदि क्लेशयुक्त है तो उसकी मुक्ति क्लेशों से कौन व कैसे करेगा? और यदि क्लेशमुक्त है,भूख-प्यास उसे नहीं लगती तो भोजनादि कराकर तुम उसे सुखी करने का पाखण्ड क्यों रचाते हो? (९)यदि मूर्ति की पूजा में केबल भावना मात्र रहती है तो वेद प्रमाणों से सिद्ध करो कि वह भावना सत्य है,तथा क्या भावना करने मात्र से किसी भी वस्तु में जो गुण उसमें न हो वह पैदा हो जाता है? (१०)पुराण में जबकि मूर्तिपूजकों को गधा बताकर निन्दा की गई है तो तुम यह गधापन का कार्य क्यों करते हो? देखो भागवत स्कन्ध१०अ०८४श्लोक१३ में मूर्तिपूजकों को गधा बताया गया है-"यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीःकलत्रादिषुभौम इज्यधीः।यत्तीर्थबुद्धिःसलिले न कर्हिचिज्जनेषु भिज्ञेषु स एव गोखरः॥अर्थ-जो व्यक्ति भौतिक पदार्थों में पूज्यबुद्धि, जल में तीर्थबुद्धि व शरीर सन्तान में आत्मबुद्धि रखता है वह विद्वानों में साक्षात् गधा है।(११)क्या परमात्मा भी सोता व जागता है? यदि हां तब तो वह विकारी हो जावेगा,निर्विकार न रहेगा।यदि नहीं तो तुम निम्न

गुरु विरजानन्द ...
ग्रन्थ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 1648
दयानन्द महिला महाविद्यालय

श्लोक बोलकर मिथ्या ढोंग क्यों रचते हो?परमा[illegible] जगाते हो? कहते हो--उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वजाः।उत्तिष्ठ कमलाकान्त मंगलायतनो हरिः।आयताभ्यां विशालाभ्यां लोचनाभ्यां दयानिधे।करुणापूर्ण नेत्राभ्यां कुरु निद्रां जगत्पते॥(१२)भागवत स्कन्ध ८अ०७श्लोक२३ में ब्रह्मा,विष्णु तथा महादेव तीनों नाम ही परमेश्वर के बताये हैं।परमात्मा सर्वशक्तिमान,सर्वोपरि विश्वमात्र का स्वामी है उसे किसी का भय नहीं है न वह त्रिशूल, चक्र,तलवार,गदा धारण करता है जिनसे किसी को मारा जावे।तो तुम त्रिशूलधारी शिव, चक्र गदाधारी विष्णु की मूर्तियों को परमात्मा की मूर्ति कैसे मानते हो?इनसे तो परमात्मा डरपोक सिद्ध होता है जो हथियार बांधे फिरता है।क्या तुम परमात्मा को इन मूर्तियों से बदनाम नहीं करते हो? (१३)शिवलिंग शिवजी की मूत्रेन्द्रिय एवं जलहरी पार्वती की भग की प्रतिमूर्ति है यह शिवपुराण कोटिरुद्रसं०अ०१२ की दारुवन की कथा से तथा कूर्म-पुराणउत्तरार्ध अ०३८ एवं स्कन्दपु० माहेश्वरखं० ६ से सिद्ध है, तो तुम शिवजी के सर-हाथ-पैर-पेट आदि को छोड़कर शिवजी की मूत्रेन्द्रिय को ही क्यों पूजते हो? क्या शिवजी की आकृति केवल लिंग जैसी थी जो तुम उसकी प्रतिमूर्ति पूजते हो? इसे पूजने से क्या तुम भी वही चीज उससे मिलने की आशा रखते हो जो उसमें से निकलती है? तुम उसका क्या करोगे? (१४)जब देवीभागवत पुराण ने स्कन्द ५ के अ० ११ में विष्णु-शिव-ब्रह्मा-इन्द्र-अग्नि आदि की उपासना करने वालों की घोर निन्दा की है तथा स्कन्द ४-१३ में इन सभी को भ्रष्ट देवता घोषित किया है,तो इनकी मूर्तियां बनाकर इनको क्यों पूजते हो? क्या इनको पूजने से तुम भी वैसे ही पतित नहीं बनोगे? क्योंकि उपास्य के गुण उपासक में आते हैं? (१५)जब परमात्मा सर्वव्यापक घटघटवासी है तो तुम उसे अपने बाहर पृथक पदार्थों में क्यों ढूंढते फिरते हो? क्या वह अज्ञानता नहीं है? (१६)आत्मा और परमात्मा में किस प्रकार की दूरी है? क्योंकि दूरी तीन प्रकार की होती है एक देश की दूरी, दूसरी काल की दूरी, तीसरी अज्ञानता की दूरी।इनमें से प्रथम तो इसलिये नहीं है क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापक उपस्थित है।दूसरी दूरी भी नहीं है क्योंकि परमात्मा के साथ ऐसी बात नहीं है कि वह कभी पहले रहा हो या आगे होवे और वर्तमान में न हो।परमात्मा नित्य है, तीसरी अज्ञानता की दूरी है कि उसके सर्वत्र घटघटवासी होते हुये भी हम उसे अपनी अज्ञानता से अनुभव नहीं करते हैं।यह अज्ञानता की दूरी ज्ञान से मिट सकती है और प्रत्येक अपनी ही आत्मा में उसे अनुभव कर सकता है। इसके लिये अपने से बाहर उसे ढूंढना व भटकते फिरना अज्ञानता क्यों नहीं है? (१७)आप यह मानते हैं कि मीर्त में भी परमात्मा सर्वव्यापक होने से व्याप्त है।किन्तु मूर्ति में उपासक का आत्मा प्रवेश करके परमात्मा से नहीं मिल सकता है।मिलना वहीं होगा जहां दोनों ही उपस्थित होवें और ऐसा स्थान स्वयं उपासक का अन्तःकरण है जहां जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों विद्यमान रहते हैं।तो ध्यानावस्थित होने पर दोनों का साक्षात्कार वहीं पर संभव है।तब मूर्तिपूजा तो परमात्मा व जीवात्मा के मिलने में बाधक स्वतः सिद्ध है।आप इस व्यर्थ कर्म को तब फिर क्यों करते हैं?(१८)परमात्मा दर्शन की वस्तु नहीं है क्योंकि वह नेत्र इन्द्रिय का विषय नहीं है।परमात्मा बहरा नहीं है जो कि घंटा घड़ियाल बजाकर उसे पुकारा जावे या ऊंचे स्वर में भजन व गाने गाये जायें।परमात्मा का तो समस्त बाह्य जगत से इन्द्रियों की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करके ध्यान किया जाता है और ध्यान करने वाले को नेत्र बन्द कर लेने पडते हैं ताकि चित्त एकाग्र हो सके।तो मूर्ति की निरुपयोगिता को स्वतः नाम पर क्यो न मानी जावे? (१९)मूर्तिपूजा को परमात्मा की उपासना में सीढ़ी बताना भी बुद्धि विरुद्ध बात है।क्योंकि सीढ़ी सदैव वहीं व्यवहार में लाई जाती है जहां लक्ष्य व उसके उपयोग कर्त्ता मे देश की दूरी होवे।एजेन्ट व दलाल वहां चाहिये जहां दो के बीच में देश व काल की दूरी होवे।उपासक व उपास्य परमात्मा के बीच में ये दोनों बातें न होने से मूर्तिपूजा की सीढ़ी

वा मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं है।वैसा मानना घोर अज्ञानता क्यों नहीं? (२०)मूर्तियों में न तो प्राणप्रतिष्ठा हो सकती है और न उनमें कोई शक्ति ही होती है।वे बादाम तोड़ने के काम तो आ सकतीं हैं,किन्तु स्वतः हानि-लाभ नहीं कर सकती हैं।इतिहास से प्रगट है कि यवनों ने लाखों मन्दिर तोड़ डाले, मूर्तियां अंग-भंग कर दीं।और आज भी उन्हें चोर चुरा ले जाते हैं।पुजारी उन्हें सुरक्षा के लिये ताले में बन्द रखते हैं।तो ऐसी दशा में बेजान मूर्तियों को परमात्मा मानकर पूजना, उसी में अपना जीवन बर्बाद करना तुम्हारी घोर अज्ञानता नहीं तो क्या है?जो तुम देखते हुये भी मूर्ति की असलियत को नहीं समझते हो?(२१)जब मुसलमान ईसाई लोग भी परमात्मा की सीधी उपासना कर सकते हैं और करते हैं तो तुमको ही ये पत्थरों की मूर्तियां बनाकर पूजने की किसलिये आवश्यकता पड़ती है? क्या तुममें उनके बराबर भी अकल नहीं है? जो परमेश्वर की सीधी उपासना भी करना नहीं जानते हो? (२२)मूर्ति का लक्षणही यह है कि जिसके अवयव जड़ हों तो चेतन्य, ज्ञानवान शक्ति सम्पन्न अमृत-पुत्र होकर भी जो लोग जड़ मूर्तियों को पेड़-पत्थरों को पूजते हैं उन्हें भ्रान्त घोर अज्ञानी क्यों न माना जाये? (२३)जब वेद न तस्य प्रतिमाऽस्ति कहकर घोषणा करता है कि परमेश्वर की कोई प्रतिमा नहीं बन सकती है क्योंकि वह अनन्त अनादि व निराकार सत्ता है,तो उसकी मूर्ति अपनी कल्पना से बनाने वाले आप लोग नास्तिक क्यों नहीं हैं? (२४)*नित्य सर्वव्यापक परमेश्वर का अवतारण नहीं हो सकता है।अवतारण या* आरोहणएक देशीय सत्ता का होता है, तो जब कृष्णादि परमात्मा के अवतार ही सिद्ध नहीं किये जा सकते हैं तो उनके शरीरों की आकृतियों की मूर्तियां बनाकर पूजने से परमात्मा का कोई सम्बन्ध भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है।राम-कृष्णादि मनुष्य और परमात्मा के भक्त थे न कि परमात्मा थे,क्या इनकी मूर्ति बनाकर पूजना व्यर्थ ही नहीं है? (२५)तुम मूर्तिपूजा करते हो अथवा उसमें व्यापक परमेश्वर की पूजा करते हो? यदि मूर्ती की करते हो तो उसके हाथ-पैर-नाक आदि नष्ट हो जाने पर उसी मूर्ति की पूजा क्यों नहीं करते हो?यदि व्यापक परमेश्वर की पूजा करते हो तो वह अंग-भंग मूर्ति में वा जिस पत्थर वा धातु से मूर्ति बनती है उनमें भी व्यापक होता है, तथा विश्व के प्रत्येक पदार्थ में व्यापक रहता है तो उसकी पूजा क्यों नहीं करते हो? एक खास शक्ल-सूरत वाली धातु व पत्थर की पूजा क्यों करते हो? एक खास शक्ल की पूजा करने से तुम केवल आकृतिपूजक हो न कि ईश्वरपूजक हो? (२६)जब किसी ने भी परमात्मा को आंखों से कभी देखा नहीं है और अगोचर होने से वह इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है तो तुम कैसे साबित कर सकते हो कि तुम्हारी कल्पित मूर्तियां परमात्मा की शक्ल व सूरत की ही होती हैं? विभिन्न प्रकार की तुम्हारी मूर्तियां ही यह सिद्ध करती हैं कि तुमको अपने कल्पित साकार परमात्मा की आकृति का कोई ज्ञान नहीं है? (२७)जब परमात्मा मूर्ति में भी व्यापक है और फूलों में भी व्यापक तो तुम फूलों को मूर्ति के परमात्मा पर क्यों चढ़ाते हो? (२८)जिस परमेश्वर ने सूर्य चन्द्रमा,विद्युत जैसे प्रकाशमान लोकों व तत्वों का निर्माण किया है।जो विश्व को खिलाता है,उसको दीपक से आरती उतार करके व भोगादि लगाकर उसका अपमान क्यों करते हो? (२९)निराकार एकदेशीय प्रत्येक जीव के शरीर में विद्यमान जीवात्मा की भी मूर्ति तुम नहीं बना सकते हो तो विश्वव्यापी अनन्त परमेश्वर की मूर्ति बनाने की पाखण्ड रचना तुम्हारी घोर अज्ञानता व पाखण्ड नहीं तो क्या है? (३०)बाराह अवतार के मन्दिरों में तुम महतर(भंगी)को पुजारी क्यों नहीं बनाते हो जो कि सूकरावतार वंशजों को पालते हैं तथा नित्य प्रातः सायं गरम-गरम ताजा भोजन डलिया में लाकर सूकर-अवतार को खिलाकर उसे प्रसन्न रख सकते हैं।क्या यह पौराणिक पुजारियों द्वारा मेहतरों के अधिकार पर डाकेजनी नहीं है? (३१)यदि यह कहा जाय कि मूर्तिपूजा चित्त को एकाग्र करने की साधन है तो भी

मिथ्या है, क्योंकि मूर्ति की आरती करना,घंटा-घडियाल बजाना, उसके सामने हाथ जोड़ना, प्रार्थना करना,साष्टांग दण्डवत करना आदि कियायें चित्त की एकाग्रता में बाधक होती हैं न कि एकाग्रता की बात सिद्ध करती हैं।बतावें कि मूर्तिपूजा चित्त की एकाग्रता में साधक कैसे है?

प्रश्नकर्त्ता- आचार्य डा० श्रीराम आर्य

पता- वैदिक साहित्य प्रकाशन कासगंज (एटा) उ०प्र० भारतवर्ष

परिग्रहण संख्या 1317

अयोध्या से प्रकाशित सनातनधर्म की एक साप्ताहिक-पत्रिका के १९अप्रेल सन्१९६६ के अंक से उद्धृत एक समाचार, जोकि श्रीरामआर्य के टोंक-शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में है।

- विकट शास्त्रार्थ -

कासगंज में एक श्रीराम आर्य नाम के एक आर्यसमाजी डाक्टर रहते हैं।ये आर्यसमाजी हैं एवं सनातनधर्म का बड़ा खण्डन करते हैं।हल्की एवं अभद्र भाषा में इनका साहित्य होता है।खण्डन-मण्डन ग्रन्थमाला नामकी १५-२०पुस्तकें छपाये हैं।मैने भी २-४ देखी हैं।शास्त्रार्थ में भी तगड़े हैं।श्रीकरपात्रीजी को मिनटों में हरा दिया, कारण कि भाषा इतनी हल्की होती है कि सभ्य मनुष्य सुनना पसन्द न करे।श्रीमाधवाचार्यजी कमलानगर दिल्ली वाले भी हार मान गये।पंडितजननी श्रीकाशीजी के पंडित ४ (१)शास्त्रार्थमहारथी पं०पुत्तूलाल अग्निहोत्री(२)वेदाचार्य पं०रजनीकान्तजी शास्त्री कानपुर(३)वेणीरामशर्मा वेदाचार्य काशी(४)मदनमोहनजी शास्त्री व्याकरणाचार्य बम्बई।इन चारों का संयुक्त मोर्चा भी पैटन टैंक जैसे मिनटों में तोड़ दिया।इनके साथ पूरे आर्यसमाज का तन-मन-धन से सहयोग भी है।अभी ८माह से श्रीसीतारामजी शास्त्री श्रीचारभुजा नारायण मन्दिर टोंक जयपुर से शास्त्रार्थ हो रहा है।अब इनसे भिड़ने में श्रीरामआर्य को छठी का दूध याद आ रहा है।८ माह में १५-२०बार प्रश्न उत्तर का आदान प्रदान हो चुका है।अभी ५ विरक्त के बराबर प्रश्नों की फाइल श्रीरामआर्य ने टोंक भेजी है।उसे अगर पढ़ें तो दांत तले उंगली दबानी पड़ती है।परन्तु फिरभी टोंक के श्रीशास्त्रीजी बड़ी मुस्तैदी से टक्कर ले रहे हैं एवं श्रीराम आर्य को मुंह छिपाना पड़ रहा है।परन्तु जो(सनातनी पंडित,श्रीराम आर्य से) हार मान गये हैं,उन्हें श्रीशास्त्रीजी के पक्ष में आकर सहयोग देकर अपने मुंह की कालिका मिटाना चाहिये।शास्त्रीजी अकेले हैं एवं धन-जन-बल से रहित हैं।श्रीराम आर्य के प्रश्न की फाइलें जिनको देखना हो तो टोंक पधारें व श्रीशास्त्रीजी के विवेचनापूर्ण उत्तर भी देखें जिससे श्रीराम आर्य को छठी का दूध याद आ रहा है।भई गति सांप छछुंदर केरी।

समीक्षा-समाचारपत्रों में भारत भर के विद्वानों को टोंक बुलाकर शास्त्रार्थ में विद्या की मदद मांगना महन्तजी की अपनी पराजय की स्वतः घोषणा है,इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।महन्तजी समझ लेवें कि आज भारत भर के सारे पौराणिक विद्वानों की बोलती हमारे साहित्य को पढकर बन्द हो चुकी है।सनातनधर्म की निस्सारता को सभी समझ चुके हैं अतः कभी कोई भी उनको मदद को सामने नहीं आयेगा।हां यह उनसे सभी कहते रहेंगें "चढ़ जा मिस्टर शूली पर भला करेंगें राम"।अतः अब आगे कभी किसी आर्यसमाजी से उलझने की भूल कर भी महन्तजी साहस न करें। -आचार्य डा०श्रीराम आर्य

(उपर्युक्त लेख श्रीरामआर्य रचित टोंक का शास्त्रार्थ नामक पुस्तक से उद्धृत है)